**प्रथम अध्याय**

**लोकगीतों की पृष्ठभूमि**

**प्रथम अध्याय : लोकगीतों की पृष्ठभूमि**

 **‘लोक’ शब्द की व्युत्पत्ति**

भारत में आर्य-भाषाओं का आदिरूप हमें संस्कृत भाषा में मिलता है। ‘लोक’ शब्द भी हमें संस्कृत में शुद्ध तत्सम रूप में मिलता है। व्युत्पत्ति के अनुसार ‘लोक’ शब्द ‘लोक-दर्शने’ धातु में ‘घञ्’ प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न है।1  संस्कृत में इस धातु से देखने से भाव का अर्थ – बोध होता है। व्युत्पत्ति के आधार पर ‘लोक’ का शाब्दिक अर्थ ‘देखने वाला’ होता है। इस निष्पत्ति के अनुसार वह समस्त जन-समुदाय, जो देखने के कार्य को संपन्न करता है, ‘लोक’ कहलाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कोशों में ‘लोक’शब्द के विविध अर्थ इस प्रकार दिये गये हैं । यथा – लोक-भुवन, जगत, जन, मनुष्य।2 लोग, मनुष्य, व्याकरण, यम, यश, मन, कीर्ति, संतान, सृष्टि के विभाग आदि।3 आंग्ल – भाषा में ‘लोक’ शब्द का समानार्थी शब्द ‘फोक’(Folk) है, जिसे निम्नानुसार व्याख्यायित किया गया है|

People in general, or any part of them without distinction, for merely alike in both singular and plural, but now that plural folks are most used; as folks will talk, some folks say so.4 A race of people; a national; a community.5

उपर्युक्त विविध अर्थों को देखने पर पता चलता है कि प्राय: सभी ने ‘लोक’ शब्द को जन, प्रजा, मानव-जाति आदि के पर्याय शब्द के रूप में ग्रहण किया है। ‘लोक’ के शाब्दिक अर्थ पर विचार कर लेने के पश्चात इस शब्द के प्रयोग की प्राचीनता एवं इस शब्द के विविध सन्दर्भों के अंतर्गत किये गये प्रयोगों का उल्लेख करना भी आवश्यक है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष-सूक्त में ‘लोक’ शब्द के प्रयोग भूमि एवं स्थान- दोनों अर्थों में हुआ है।

नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोतात्तथा लोकां अकल्पयन्॥6

यजुर्वेद में ‘लोक’ (समाज) की विराट कल्पना की गयी है। वह पुरुष रूप ईश्वर है। उसके सहस्त्र मुख, सहस्त्र नेत्र और सहस्त्र पद है।7 जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में बहु व्याहितो वा अयं बहुता लोक: । क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात् ।8 कहकर ‘लोक’ की विशालता की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि नानाविध प्रसृत ‘लोक’ प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त है एवं प्रयत्न पूर्वक भी इसे पूरी तरह नहीं जाना जा सकता।

‘लोक’ जिसे प्रारंभ में समाज के पर्याय के रूप में स्वीकृत किया गया है, वह कालांतर में समाज का एक अंग मात्र रह गया है। शनै: शनै: समाज दो भागों में विभाजित हो गया- वेद रीति प्रधान समाज और लोक-रीति प्रधान समाज। इस प्रकार अनेक प्रकार से फैला हुआ ‘लोक’ सीमित अर्थ में प्रयुक्त होकर वेद से विलग हो गया। वेद दर्शन और ज्ञान से गर्वित रहा और लोक परंपरा से पालित। वेद और लोक के विभेद को कई मनीषियों ने अपनी पोथियों में इस प्रकार व्यंजित किया है।

 महावैयाकरण पाणिनि ने वेद से विलग लोक की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेकानेक शब्दों की निष्पत्ति बतलाते हुए स्पष्टत: उल्लेख किया है कि वेद में इसका स्वरुप इस प्रकार का है, परंतु लोक में इसका स्वरुप भिन्न समझना चाहिए । भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अनेक नाट्य–धर्मी तथा लोक-धर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख कर लोक की पृथक सत्ता को स्वीकार किया है।9 महर्षि व्यास ने ‘लोक’ शब्द का प्रयोग जन-साधारण के अर्थ में किया है।10 अन्यत्र महाभारत में ही व्यास ने ‘प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नर:’ कहकर लोक की महत्ता स्वीकार की है। भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद में लोक-संग्रह पर बहुत बल दिया है। वे अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं –

“कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय: ।

लोकसंग्रहमेवापि सम्‍पश्‍यन्‍कर्तुमर्हसि ।। 11

महाभारत और भगवद् गीता में क्रमश: ‘वेदाच्च वेदिका: शब्दा: सिद्धा: लोकाच्च लौकिका:’ तथा ‘अतोऽस्मिलोके वेदे च प्रथित: पुरुषोत्तम:’ आदि लोक-वेद-विधि में विरोध को व्यक्त करने वाले और भी अनेक वाक्य मिलते हैं। प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त ‘लोकजत्ता’, ‘लोकअप्पवाय’ आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्त्व व्यक्त करते है। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ ही ‘लोक’ शब्द मनुष्य-मात्र के भाव से भूषित हुआ। प्रजापालक नृपति अशोक के शिलालेखों में व्यव्ह्यत ‘लोक’ का शाब्दिक अर्थ समग्र प्रजाजनों के हित में हुआ है।

उक्त विवरण पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि यहाँ ‘लोक’ शब्द वेद विरोधी होते हुए भी अपने-आप में विशद अर्थ समेटे हुए है। पर साहित्यिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त ‘लोक’ शब्द इतना विशदार्थी नहीं है। अत: यहाँ पर साहित्य-विशेष को द्योतित करने वाले शब्द ‘लोक’ की कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं प्रस्तुत की जा रही हैं – “लोक शब्द का अर्थ ‘जनपद’ या ‘ग्राम्य’ नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते हैं।”12

“...लोक मनुष्य-समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोक-तत्व कहलाते हैं।13

“लोक हमारे जीवन का महासुद्र है, उसमें भूत, भविष्य वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरुप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यावसान है। अर्वाचीन मानव के लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक- पृथिवी मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।14 डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल निम्न पंक्तियों में ‘लोक’ और ‘शास्त्र’ के विभेद को बहुत ही सुंदर ढंग से समझाते हुए लिखते है “किसी व्रत, नियम या छंद के भीतर बंधा हुआ जो धार्मिक जीवन है वह शास्त्रीय या मार्गीय या नियमानुगत कहा जायेगा। किंतु इसके अतिरिक्त जो शास्त्रीय सीमाओं और व्रतों से व्यक्तिरहित है, जिसे अथर्ववेद के शब्दों में व्रात्य-जीवन कहेंगे, वह लोक-धरातल पर विकसित होने वाले समाज का विराट जीवन माना जायेगा। +++शास्त्र परिष्कृत उपवन है, और लोक अरण्य है। +++ शास्त्र बुद्धि के मंथन का फल है। लोक हृदय के मंथन से मिलने वाला वरदान है। ह्रदय और बुद्धि का अन्तर ही लोक और शास्त्र का अन्तर है, जैसा कि गोसाईजी ने कहा है – ह्रदय सिन्धु मति सीप समाना।”15 इसके अतिरिक्त आपने यह भी बताया कि वर्त्तमान में जो लोक है, वही भूतकाल का शास्त्र बन जाता है। प्राचीन को आपने शास्त्र बताया है एवं नूतन को लोक । “... लोक साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित है। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्राय: उल्लेख किया जाता है, किंतु ‘लोक’ दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।16 [डॉ॰ सत्येन्द्र](https://hi.wikipedia.org/w/index.php?title=%E0%A4%A1%E0%A5%89%E0%A5%B0_%E0%A4%B8%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A5%87%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0&action=edit&redlink=1) के अनुसार- "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"17 डॉ. श्याम परमार ने साहित्यिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने वाले ‘लोक’ शब्द की उक्त संदर्भ में सीमा निम्न प्रकार से निर्धारित की है – “आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में ‘लोक’ का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्यादि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परम्पराएं, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित है तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किंतु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।18

गुजरात के खोडिदास परमार लोक शब्द की व्याख्या करते हुए कहते है “सौराष्ट्र में ‘लोक’ शब्द का अर्थ खेत से जुडी जातिओं तक सीमित है, जिसमें कणबी, खरक, कोळी आदि ‘लोकवरण’ कहलाते है| कई लोग खुद की जमीन न होने की वजह से जमींदार के खेत में खेती करते है जिसे ‘लोक’ कहकर बुलाया जाता है|19

‘लोक’ शब्द की व्याख्या डॉ.अमृत पटेल अपनी पुस्तक ‘चंपानी कलीओमां कस्तुरी’ पुस्तक में कहते है- “लोक मतलब शहर और गाँव में फैली हुई समग्र जनता जिनके पास व्यावहारिक ज्ञान के मूलभूत पुस्तक नहीं| जिनके पास शिष्ट संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य की चेतना नहीं और जो एक परंपरागत प्रवाह में जीवन व्यतीत करते हैं, वह ‘लोक’ हैं|पढ़ा लिखा या शिष्ट मानव भी यदि परंपरागत संस्कार में जीवन यापन करता हैं तो वह ‘लोक’ है|”20

आधुनिक मत के लेखक डॉ.हसु याज्ञिक अपनी पुस्तक ‘लोकविद्या-परिचय’ में ‘लोक’ शब्द को समझाते हुए कहते हैं- “जीवन को जानने, देखने, आनंदलेने की दृष्टि समान है ऐसा सामाजिक एकम व् उसका समूह|”21

उक्त विवेचन से बोध होता है कि समाज दो वर्गों में विभक्त है। एक उच्च एवं सुसभ्य वर्ग है जो पांडित्य से परिपूर्ण है, और दूसरा निम्न या असभ्य वर्ग है जो परम्परा पालनकर्ता है एवं जिसे ‘लोक’ संज्ञा से अभिहित किया जाता है। परंतु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि लोक-साहित्य में लोक-मानस की अभिव्यक्ति होती है। अत: हमें साहित्यिक विशेषण ‘लोक’ की लोक-मानस को ध्यान में रखकर व्याख्या करनी होगी। फलत: कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण समाज में जहाँ तक परम्पराएं पथ प्रदर्शित करती है, प्राकृतिक विश्वास (देवी-देवता में, जादू-टोने में, मन्त्र-तंत्र में) संबल प्रदान करते हैं, शकुन राह में अवरोधक तत्त्व बनते एवं अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं, विविध पशु-पक्षियों की बोलियाँ भवितव्यता का बोध कराती है, अति-प्राकृतिक तत्वों की विद्यमानता की पुष्टि में प्रबल तर्क पेश किये जाते हैं, धार्मिक भावना से अभिभूत होकर औषधि का त्याग करके किसी पीर-पैगम्बर या देव के चरणामृत का पान कर सन्तुष्ट हुआ जाता है, उस सीमा तक प्रत्येक व्यक्ति ‘लोक’ की श्रेणी में परिगणित होगा – नागरिक या ग्रामीण कोई भी क्यों न हो।

‘लोक’ शब्द के आंग्ल-भाषा के प्रतिरूप(Folk) फोक शब्द का पूर्व रूप Folc निश्चित किया गया है। यह शब्द ऐंग्लो-सेक्सन शब्द है और यह जर्मनी में Volk रूप में प्रचलितहै। आंग्ल-भाषा में यह शब्द असंस्कृत और मूढ़-समाज अथवा जाति का बोध करवाता है। इसके साथ-ही-साथ सर्वसाधारण एवं राष्ट्र के समग्र लोगों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। Folk ले विषय में ‘एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका’ ने बताया कि आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक (Folk) होते है और विस्तृत अर्थ में इसशब्द से सभ्य-से-सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है। किंतु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐसे संयुक्त शब्दों (जैसे लोक-वार्ता – Folklore, लोक-संगीत – Folkmusic) में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक-संस्कृति और सिविध शिक्षा की धाराओं से मुख्यतः परे है, जो निरक्षर-भट्टाचार्य है, अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है – ग्रामीण और गँवार।

‘लोक’ शब्द को लेकर पौर्वात्य तथा पाश्चात्य मनीषियों ने प्राय: साम्य रखने वाले विचारों को ही अभिव्यक्त किया है। आधुनिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने परपता चलता है कि ‘लोक’ शब्द ने न केवल एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य को ही अलंकृत किया अपितु आज के समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का भी वाचक बन गया है। साहित्यिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए ‘लोक’ को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है वह वर्ग-विशेष, जो अतर्क्य भाव से अंध-श्रद्धालु की भांति पूर्ण आश्वस्त होकर प्रकृति के कण-कण में दैविक सत्ता के दर्शन करताहै; शुद्ध-प्रबुद्ध एवं पुस्तकीयज्ञान से गर्वित मानस की तरह छल-प्रपंचों से परिपूर्ण नही है, शास्त्रीयता की श्रृंखलाओं से आबद्ध नहीं है, स्वानुभूत ज्ञान के आधार पर जीवित है, राजनीति के दाँव-पेचों से पूर्णत: अनभिज्ञ है, आधुनिक वैज्ञानिक युग की जटिलताओं से आपूर्ण जीवन से सतत संघर्ष करता हुआ आज भी रूढ़ परम्पराओं का पुजारी है, पावस-काल रूपी पावन-अतिथि को सस्नेह आमंत्रित करने हेतु नरमेध आदि अनेक अंधविश्वासों को पूर्णतया स्वीकारने वाला है – लोक है। इसके मानस से प्रणीत निरलंकृत-नैसर्गिक भाव-सौन्दर्य से संपन्न, आदि-कवि वाल्मीकि के मुखारविन्द से सहजाभिव्यक्ति प्रथम श्लोक की भांति प्रकट होने वाला साहित्य ही लोक-साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। स्वाभाविकता, सहजोद्रेकता एवं सरलता इसके प्रधान गुण है। इसके प्रत्येक शब्दमें ह्रदयस्पर्शिणी अद्वितीय शक्ति है। विद्वानों के वैचारिक जटिल्य से अवगत भाव-जगत का निवासी जन ही ‘लोक’ है ।

उक्त विवेचित लोक की शाश्वत अभिव्यक्ति-परंपरा ही लोक-साहित्य है। इस लोक के मानस की अभिव्यंजना नाना प्रकारेण हुई है। लोक प्रतिदिन जिस प्रकार का जीवन-यापन करता है, उसी की उसने अनेक रूपों में अभिव्यक्ति की है। इस सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में साहित्यिक रूपों के साथ नैतिक-मूल्यों, रीति-रिवाजों, विश्वासों, धारणाओं आदि को भी यथेष्ट स्थान मिला है। आज के युग में आदिम मानस अध्ययन हेतू उक्त समस्त तत्वों और रूपों का पूरा पूरा महत्त्व है।

लोक सहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक-साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है।

साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहना चाहिए। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है अत: जनसाहित्य (लोकसाहित्य) का आदर्श विशिष्ट साहित्य से पृथक् होता है। किसी देश अथवा क्षेत्र का लोकसाहित्य वहाँ की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है जो साधारण जनस्वभाव के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की सभी प्रकार की भावनाएँ बिना किसी कृत्रिमता के समाई रहती हैं। अत: यदि कहीं की समूची [संस्कृति](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF) का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोकसाहित्य का विशेष अवलोकन करना पड़ेगा। यह [लिपिबद्ध](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B2%E0%A4%BF%E0%A4%AA%E0%A4%BF) बहुत कम और मौखिक अधिक होता है। वैसे लोकसाहित्य को लिपिबद्ध करने का प्रयास इधर कुछ वर्षों से किया जा रहा है और अनेक ग्रंथ भी संपादित रूप में सामने आए हैं किंतु अब भी मौखिक लोकसाहित्य बहुत बड़ी मात्रा में असंगृहीत है।

लोक जीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण [लोकगीतों](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%95%E0%A4%97%E0%A5%80%E0%A4%A4) व लोक-कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक-साहित्य में लोक-मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती-गुनगुनाती है। लोक-साहित्य में निहित सौंदर्य का मूल्यांकन सर्वथा अनुभूतिजन्य है।

आदिकाल से [श्रुति](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%81%E0%A4%A4%E0%A4%BF) एवं [स्मृति](https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF) के सहारे जीवित रहनेवाले लोकसाहित्य के कुछ विशेष सिद्धांत हैं। इस साहित्य में मुख्य रूप से वे रचनाएँ ही स्वीकार की जाती हैं अथवा जीवन पाती हैं जो अनेक कंठों से अनेक रूपों में बन बिगड़कर एक सर्वमान्य रूप धारण कर लेती हैं। यह रचनाक्रम आदिकाल से अबतक जारी है। ऐसी बहुत सी साहित्यक सामग्री आज भी प्रचलित है जो अभी एकरूपता नहीं ग्रहण कर पाई हैं। परंपरागत एवं सामूहिक प्रतिभाओं से निर्मित होने के कारण विद्वानों ने लोकसाहित्य को "अपौरुषेय" की संज्ञा दी है।

निश्चय ही परंपरागत लोकसाहित्य किसी एक व्यक्ति की रचना का परिणाम नहीं है। वैसे तो इसके कई प्रमाण दिए जा सकते हैं कि एक ही गीत, कथा या कहावत एक स्थल पर जिस रूप में होता है दूसरे स्थल पर पहुँचते-पहुँचते उसका वह रूप बदल जाता है किंतु एक अच्छा प्रमाण यह होगा कि सैकड़ों वर्ष से गाए जानेवाले [लोकमहाकाव्य](https://hi.wikipedia.org/w/index.php?title=%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%95%E0%A4%AE%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A5%8D%E0%A4%AF&action=edit&redlink=1) [आल्ह-खंड](https://hi.wikipedia.org/w/index.php?title=%E0%A4%86%E0%A4%B2%E0%A5%8D%E0%A4%B9-%E0%A4%96%E0%A4%82%E0%A4%A1&action=edit&redlink=1) को आज तक एकरूपता नहीं प्राप्त हो सकी। इस कार्य में लोकप्रवृत्ति किसी प्रतिबंध को स्वीकार ही नहीं करती। स्फुट गीतों में तो केवल पंक्तियाँ ही इधर उधर होती हैं किंतु प्रबंध गीतों (गाथाओं) एवं कथाओं में घटनाएँ भी बदलती रहती हैं। यह सब होते हुए भी उन प्रबंधों एवं कथाओं के परिणामों में प्राय: कोई परिवर्तन नहीं स्वीकार किया जाता। परिणाम एवं लोकप्रचलित सत्य तथा तथ्य को आधार मानकर घटनाचक्र मनमाने ढंग से चलाए जाते हैं। रामकथा को ही लें। "नाना भाँति राम अवतारा, रामायन सत कोटि अपारा" वाली बात शत प्रतिशत सत्य है। रामकथा संबंधी जितनी विविधताएँ लोकसाहित्य में प्रचलित हैं यदि उन सब को एकत्र किया जाए तो यह विचित्र प्रकार का "लोकरामायण" ग्रंथ तैयार होगा जो अबतक के सभी रामाख्यानों से भिन्न अस्तित्व का होगा। घटनाचक्रों को देखते हुए कभी-कभी तो उनकी संगति बैठाना भी कठिन हो जाएगा। उदाहरणस्वरूप लोकगीतों में भी रामजन्म के कई कारण हैं किंतु एक बहुत ही साधारण कारण यह है कि एक बार जब महाराज दशरथ प्रात: काल सरयू में स्नान करने जा रहे थे तो उनका दर्शन सवेरे ही गली में झाडू देनेवाली हेलिन (भंगिन) को हो गया। उसने ताना मारा कि आज प्रात: काल ही संतानहीन व्यक्ति का दर्शन हुआ, पता नहीं दिन कैसे बीतेगा। दशरथ को यह बात लग गई और तभी वे रानी समेत पुत्रप्राप्ति के लिए वन में तप करने चले गए। इस प्रकार कारण दूसरा दिखाते हुए भी लोककथाकार दशरथ को फिर तपस्यावाले स्थल पर ले आता है जहाँ कथा अन्य रामायणों की कथा से मिल जाती हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जो परिणाम में तो नहीं किंतु घटनाओं के मामले में एक नहीं हैं। ऐसे परिवर्तनों एवं संशोधनों को लोकसाहित्य बहुत ही आसानी से स्वीकार कर लेता है। इस साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अनेक रूपों में होते हुए भी अनेकता में एकता की भावना से युक्त होता है। भाषा के कलेवर को बदलकर भी भावपक्ष में कोई परिवर्तन नहीं दीखता। एक ही रचना जो किसी स्थल पर वहाँ की बोली में पाई जाती है, वही बहुत दूर दूसरी बोली में भी मिल जाती है। स्फुट गीतों के भावों एवं प्रबंधों की कथाओं की यह यात्रा कभी कभी तो इतनी लंबी होती है कि आश्चर्य होता है। क्षेत्रों एवं देशों की सीमा मनुष्य भले ही निर्धारित कर दे पर लोकसाहित्य इसे स्वीकार नहीं करता। ऐसा शायद इसलिए संभव हुआ होगा कि यात्राकाल में प्राचीन मानव जब कभी दूर गया होगा तो अपना साहित्य साथ लेता गया होगा और गंतव्य स्थान पर उसकी छाप छोड़ आया होगा जिसे वहाँ के लोगों ने स्वीकार कर लिया होगा। यह क्रम आज भी जारी है। जब कोई ग्राम्या नैहर से ससुराल जाती है तो स्वभावत: वह नैहर की उन लोक रचनाओं को अपने साथ लेती जाती हैं जो उसे स्मरण रहती हैं। यदि उसका विवाह मायके की बोलीवाले क्षेत्र में हुआ तब तो कोई बात नहीं, किंतु अन्य बोली के क्षेत्र में विवाह होने पर वह नैहर के गीतों को स्थानीय बोली के लहजों में ढाल लेती है। उस इस कार्य में ससुराल की ग्राम्याओं द्वारा भी सहायता मिलती है। इस प्रकार बनाव बिगाड़ बराबर चलते रहते हैं। [लोकगायक](https://hi.wikipedia.org/w/index.php?title=%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%95%E0%A4%97%E0%A4%BE%E0%A4%AF%E0%A4%95&action=edit&redlink=1) एवं गायिकाओं का यह स्वभाव बहुत दिनों से चला आ रहा है कि यदि उन्हें किसी कवि की रचना पसंद आ गई तो उसे तोड़ मरोड़कर अपनी बोली के अनुकूल बना लेती हैं। ऐसा करते समय कभी कवि का नाम निकाल दिया जाता है और कभी रहने दिया जाता है। प्रमाण के लिए आज भी ऐसे लोकगीत सुने जा सकते हैं कुछ विद्वानों का कहना है कि ऐसे भजन तथा गीत लोककवियों द्वारा स्वयं बना लिए गए हैं और उनकी उपयोगिता को बढ़ाने के लिए उच्च एवं बहुश्रुत कवियों के नाम जोड़ दिए गए ताकि अधिकांश लोग ऐसे गीतों को याद कर लें। पर यह बात है नहीं। लोककवि इसी स्थल पर तो उदार होता है। ऐसे बहुत से भजन लोक जीवन में न जाने कब से चले आ रहे हैं जिनके रचनाकारों के बारे में पता ही नहीं चलता। सत्य तो यह है कि इस प्रकार के भजनों की संख्या नामयुक्त भजनों की संख्या से कहीं अधिक है और वे सरसता में भी नामधारी भजनों से घटकर नहीं हैं। लोकगायकों की एक प्रवृत्ति यह भी होती है कि वे स्थानीय घटनाओं को तुरंत भावबद्ध कर लेते हैं।

‘लोकसाहित्य’ शब्द का प्रयोग अत्यंत विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। लोकसाहित्य जनसामान्य का साहित्य है। किसी भी व्यक्तिविशेष का अधिकार उस पर नहीं है। लोकसाहित्य को हम मुख्यतः दो भागो में विभक्त कर सकते हैं।

1. लोककथा
2. लोकगीत

लोकगीत के कर्ता कौन है? यह हम नहीं जान सकते । लोकगीत या लोककथा के रचनाकार खुद को गोपनीय रखते है। जैसे एक बालक प्रकृति की देन हैं, किन्तु एक पुख्त मनुष्य ज्यादातर उसे अपनी रचना मानते है। ठीक ऐसे ही लोक-साहित्य भी शिशु साहित्य(बाल साहित्य) है। मानव मन की गहराई में यह स्वयं स्फुरित होते हैं। लोकसाहित्य के मुख्यतः तीन रूप हैं

1. लोककथाओं
2. लोकोक्ति या कहावत और
3. लोकगीत।

उपरोक्त तीनों लोक स्वरुप का अपना विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व हैं। क्योंकि इनमें शब्द के साथ संगीत मिला हुआ है। शब्द और स्वर इन्हें जीवनरस प्रदान करते है। गीत, राग और स्वरलहरी के संयोग से निकला हृदयोद्गार मनुष्य को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं।

लोककथाएँ वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोककथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण है। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं। लोकगीतों की भाँति लोककथाएँ भी हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त हैं।

बहुत अधिक प्रचलित और लोगों के मुँहचढ़े वाक्य लोकोक्ति के तौर पर जाने जाते हैं। इन वाक्यों में जनता के अनुभव का निचोड़ या सार होता है। इनकी उत्पत्ति एवं रचनाकार ज्ञात नहीं होते। लोकोक्तियाँ आम जनमानस द्वारा स्थानीय बोलियों में हर दिन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से उपजे वैसे पद एवं वाक्य होते हैं जो किसी खास समूह, उम्र वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में प्रयोग किया जाता है। इसमें स्थान विशेष के भूगोल, संस्कृति, भाषाओं का मिश्रण इत्यादि की झलक मिलती है। लोकोक्ति वाक्यांश न होकर स्वतंत्र वाक्य होते हैं।

लोकगीतों के रचिता अज्ञात होते हैं, उसका सर्जन समय निश्चित करना संभव नहीं होता। लोकगीत का सर्जन सामूहिक चेतना से सहज रूप में होता है। ह्रदय के सहज स्वाभाविक भावानुभूति के रत्नों से लोकगीतों की सजावट होती है।

जिनकी वाणी में बुद्धि नहीं ह्रदय हैं , जिनके विनय में छल नहीं पश्चाताप है, जिनकी मित्रता में स्वार्थ नहीं अपितु प्रेम हैं, जिनके मानस पट में आनंद है, सुख है, प्रेम-करुणा है, त्याग-क्षमा या विश्वास है ऐसे ही ग्रामीण स्त्री-पुरुषों के हृदयासन पर बैठ प्रकृति अपना गान करती हैं, प्रकृति का यहीं गान लोकगीत हैं। वेद की तरह ये भी अपौरुषेय है, इस प्रकार लोकगीत में किसी रचनाकार की कठोरता नहीं लेकिन जनसामान्य की मृदुता है। गरीब-धनवान या ऊँच-नीच का भेद यहाँ नहीं यह सबके लिए सहज है। लोकगीत सैंकड़ों कंठो पर सवारी कर परम्परा के प्रवाह को बिना हानि पहुंचाए गतिमान रखता है।

हिन्दी साहित्य-कोश में ‘लोकगीत’ शब्द के ये अर्थ दिये गये हैं :

1. लोक में प्रचलित गीत,
2. लोक निर्मित गीत,
3. लोक-विषयक गीत ।

 वस्तुत: लोक-विषयक गीत शब्द का अर्थ इस प्रसंग में अभिप्रेत नहीं है। लोकगीत में लोक में प्रचलित गीत ही होता है, परंतु इस प्रचलन के भी दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो किसी समय, विशेष मात्रा में प्रचलित। ऐसा होता है कि कभी-कभी कुछ गीत विशेष रूप में प्रचलित हो जाते हैं, फिर कुछ समय उपरांत वे समाप्त हो जाते हैं। ऐसे अस्थायी गीत लोकगीतों के अंतर्गत नहीं आएंगे। दूसरे अर्थ में ऐसा प्रचलन होता है, जिसकी एक परंपरा-सी बन जाती है, जो पीढ़ियों तक चलती रहती है। अनेक कवियों के भजन परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते हैं। ये गीत भी लोकगीत नहीं कहला सकते। लोकगीत तो वे हैं, जिनको किसी व्यक्तित्व से संबंधित नहीं किया जा सकता। जब ऐसा है, तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या लोकगीत लोक द्वारा निर्मित होते हैं?

कुछ व्यक्ति यह मानेंगे कि लोक कोई ऐसी सत्ता नहीं, जो गीत बना सके। लोक तो मनुष्यों का ही एक समूह है, उसमें तो कोई एक व्यक्ति ही गीत बना सकता है। इस कथन में सत्य अवश्य है, उसमें तो कोई एक व्यक्ति ही गीत बना सकता है। इस कथन में सत्य अवश्य है, किंतु लोकगीत तो वस्तुत: वही हो सकता है,जिसमें निर्माणकर्ता का निजी व्यक्तित्व न झलकता हो। वह लोकमानस से तादात्म्य रखता हो और ऐसी व्यक्तित्वहीन रचना करता है कि समस्त लोक काव्यत्व उसमें उभर आता है और समूचा लोक उसे अपनी चीज कहने लगता है। वह लोक का अपना गीत हो जाता है, जो परंपरा में पड़ जाता है और परंपरा उसमें समय-समय पर अनुकूल परिवर्तन करती रहती है।

लोकगीतों का विषय-विस्तार लोक का समस्त व्यक्त जीवन है। जीवन का कोई ऐसा अंग छूटा हुआ नहीं मिलता है, जिस पर लोक ने न रचना की हो। लोक ने क्या सोचा और अनुभव किया केवल यही नहीं अपितु युग-युग की पीड़ा, वेदना, युग-युग का हर्ष, श्री, रीति, नीति, प्रथा, गाथा इत्यादि का परिचय भी गीतों के द्वारा होता है। वस्तुत: इनमें मानव और प्रकृति का इतिहास निहित है। इनमें व्यापक संस्कृति और उसकी अखंड एकता के दर्शन मिलते हैं। जड़, जीव, जगत, अंतरिक्ष, आकाश, भूत-प्रेत, पूजा-बलि, सुख-दुःख सभी कुछ तो है हमारे लोकगीतों में।

देवेन्द्र सत्यार्थी ने ठीक ही लिखा है, “ लोकगीतों के माधुर्य में स्त्री-पुरुष ने थककर अपनी थकान मिटायी है, इसकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेम की मस्ती आयी है, बूढों ने अपना मन बहलाया है, वैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटायी है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावट दूर की है, किसानों ने अपने छोटे-बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल-भवनों पर पत्थर चढ़ाये हैं और भौजियों ने चुटकले छोड़े हैं।”22

वास्तव में साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, हंसती है, रोती है, खेलती है, उन सबको गीतों के अंतर्गत रखा जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जो सोलह-संस्कार हैं, उन सभी के अवसर पर गीत गाये जाने की प्रथा परंपरा से चली आ रही है। ऋतुओं के परिवर्तन का प्रभाव मानव-जीवन पर पड़ता है। बाह्य जगत में इस परिवर्तन के नर्तन को देखकर ह्रदय में उल्लास की जो उमंगें उमड़ती हैं, उन्हीं की अनुभूति लोकगीतों के रूप में व्यंजित होती है। खेतों की बोआई, निराई, लुनाई आदि के समय भी गीत गाये जाते हैं। वस्तुत: लोकगीत मानव विकास की निधियां हैं, भावों के अशेष भंडार हैं।

**मानव-जीवन तथा गीत**

आदि काल से ही मानव अपनी प्रत्येक क्रिया में अपने आपको अभिव्यक्त करता आ रहा है। उसने अपने जीवन का विकास मनन एवं अनुकरण के द्वारा किया है। उसका आंतरिक जगत बाह्य जगत की अपेक्षा विस्तृत है।

विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आदि मानव ने सर्वप्रथम अपने रूप को निहारा और उसी के माध्यम से अन्य पदार्थों को जानने का प्रयत्न किया। इस प्रक्रिया से उसके ह्रदय में विचारों का उदय हुआ और उन्हें व्यक्त करने के लिए उसके मुख से स्वत: ही वाणी फूट पड़ी। उसके जीवन में भूख, वासना और भय की चेष्टाएं प्रमुख रहीं, उन्हीं के आधार पर उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ। आदि मानव ने श्रम के द्वारा प्रकृति के साथ संबंध जोड़कर अपनी क्षुधा शांत की। सबसे बढ़कर तो उसे मृत्यु का भय हुआ, और उसने अर्चना की : **मृत्योर्माऽमृतंगमय।** उसके अस्तित्व को सुरक्षित रखने वाली पृथ्वी थी और वही उसकी माता थी और वह उसका पुत्र था – **माताभूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या: ।** ऐसी मधुरतम उद्भावनाओं एवं कल्पनाओं ने ही मानव को मानव बनाया।

मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति समाज में ही कर पाता है। वस्तुत: अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में उसे सुख अनुभव होता है, और उनकी तृप्ति न होने पर उसे दुःख होता है। इस प्रकार सुख तथा दुःख के ये स्थायी भाव उसके जीवन में ताने-बाने के भांति गुथे हैं। मानव जब कभी भी स्वानुभूति से प्रेरित, सुख-संवेदनाओं से आंदोलित हुआ होगा, गीतों के अज्ञात स्वर मनुष्य के अधरों पर गूंज उठे होंगे। इनकी मूल प्रेरणा है – मानव-ह्रदय की रसात्मक अनुभूति। इस रसात्मक अनुभूति का उद्वेलन ह्रदय की संकुचित सीमा को तोड़कर जनवाणी द्वारा मुखरित होने की स्थिति में पहुंच जाता है, तभी गीतों का स्त्रोत उमड़ पड़ता है।

**गीतों का साहित्यिक तथा लौकिक रूप**

पश्चिम के गीत-चिंतकों ने गीत को “मानव-ह्रदय का उद्वेलित एवं स्वत: स्फुरित संगीत”23 कहा है। मनुष्य के ह्रदय में चाहे वह सभ्य हो अथवा असभ्य, पठित हो या अपठित, स्वयंकी भावनाओं को प्रकट करने की इच्छा और क्षमता अवश्य रहती है। वह उनके उद्भव को उद्गीत करने की चेष्टा करता है। इस प्रयास में उसकी रागात्मक प्रवृत्ति लयपूर्ण होकर गीत का स्वरुप धारण कर लेती है। महादेवी वर्मा द्वारा दी गयी गीत की परिभाषा में भी गीत के उद्गम की इस सहज स्थिति का उद्घाटन हो जाता है : “सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।“24

सुख-दुःखमयी भावावेश की अवस्था के चित्रण का माध्यम अश्रुपात, दीर्घ नि:श्वास, पुलक और मुस्कान आदि आंगिक चेष्टाओं तक ही सीमित न रहकर हर्ष और वेदना का स्वरुप जब कंठ के द्वारा साकार हो उठता है, तभी गीत के स्वर फूट पड़ते हैं। मानव ह्रदय में स्पंदित होनेवाले विविध भाव गीत के प्रेरणादाता सिद्ध होते हैं। जीवन में मनुष्य को अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से होकर गुजरना पड़ता है, अनुकूल परिस्थितियों से उसके ह्रदय में उल्लास छलकने लगता है। वह आत्म-विभोर हो नृत्य करने लगता है। आत्मा का आनंद आंगिक चेष्टाओं में व्यक्त होकर नृत्य बन जाता है और वाचिक होकर गान। नृत्य और गान मानव-ह्रदय के आनंद की अभिव्यक्ति के माध्यम बन गये हैं। ‘गान’ मानव –जीवन का एक स्वाभाविक अंग है। अमर कोश के अनुसार ‘गीत’ और ‘गान’ समानार्थक हैं। **गीतं गानमिमेसमे।**25 सुख में गाकर वह उल्लसित होता है, किंतु केवल सुख ही गीतों की प्रेरणा को मुखर नहीं करता। कष्ट एवं पीड़ाओं की अनुभूति भी ‘गीतों’ को जन्म देती है। मानव-ह्रदय का यह शाश्वत सत्य प्राय: देखने में आया है कि प्रणय-संबंधी सहज वृत्ति की भांति ‘गीत-सृजन’ की सहज वृत्ति भी जन-मानस में समान रूप से स्पंदित होती है।

 गीत के दो भेद माने गये हैं : (१) वैदिक और (२) लौकिक। वैदिक गीत से हमारा तात्पर्य साहित्यिक गीत से है, जिसके **हिन्दी साहित्य कोश में छ: लक्षण बतलाये गये हैं।**

सुस्वरं, सरसं चैव सरागं, मधुराक्षरम् ।

सालंकारं प्रमाणं च षड्विधं गीत-लक्षणम् ।।26

 लोकगीतों की उत्पत्ति के संबंध में उपर्युक्त विचारों के आधार पर जो निष्कर्ष निकलते हैं, उन्हें हम निम्न रूप से प्रस्तुत कर सकते हैं :

1. आदि मानव ने सर्वप्रथम अपने –आपको देखने के पश्चात प्रकृति को ही देखा और उसे सर्वस्व समझा । ऋग्वेद का मन्त्र इस बात का साक्षी देता है।

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रेभूतस्यजात: पतिरेक आसीत् ।

सदाधारपृथ्वींधामुतेमां कस्मैदेवाय हविषाविधेम ।। 27

 मानव ने अपने आप को जिस रूप में पाया, उसी रूप में प्रकृति को भी देखा। प्रकृति में प्रजनन-शक्ति को देखकर उसके मन में सुख का उदय हुआ, नाश को देखकर उसे दुःख का अनुभव हुआ। इसी सुख तथा दुःख में जो भावाभिव्यन्जना की गयी, वही लोकगीत बन गये।

1. संतोष तथा उल्लास ने लोकगीतों को जन्म दिया । आदि मानव ने आनंदोत्सव के समय नाचते हुए कुछ लयबद्ध शब्दों का उच्चारण किया, जिसे दूसरों ने भी गाकर लोकगीत का रूप दिया।
2. आदि मानव अपने कष्टों को दूर करने के लिए, परिश्रम के बोझ को हलका करने की दृष्टि से गुनगुना लिया करता था, और उसी गुनगुनाहट से लोकगीत की उत्पत्ति हुई।
3. लोकगीतों में मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं।
4. लोकगीतों से मनोरंजन भी होता है।

लोकगीतों की मूल प्रेरणा का कारण समस्त रागात्मक प्रवृत्तियों को ही माना जाएगा। जहाँ आदिम मानव की चेतन एवं अर्धचेतन स्वानुभूति भी सहज ही अपने आप व्यक्त हो गई है। पाश्चात्य विद्वानों ने लोकगीतों के लिए जो ‘स्वत: नि:सृत संगीत’ (Spontaneous music) की संज्ञा दी है, वह अत्यंत सार्थक एवं तथ्य- चिंतन की गंभीरता को प्रकट करती है। किंतु लोकाभिव्यक्ति में संस्कार एवं परम्पराओं का आधार भी विचारणीय है। धार्मिक, अनुष्ठानिक एवं विभिन्न प्रसंगों पर गाये जानेवाले गीतों में जो प्रवृत्तियां लक्षित होती हैं, उनमें मानव की आदिम रागात्मक भावनाओं के साथ ही लोक में पल्लवित एवं पुष्पितसंस्कारों की छाया को भी स्पष्टता के साथ देखा जा सकता है।

वास्तव में लोकगीत एक दैवी वाक्य है, जिसका न कोई निर्माता है, न स्वर-संधाता । वह जैसे मानव समुदाय में सहज ही स्वयं ही मुखरित हो उठा है, और बिना प्रयास के सहज ही कंठ से कंठ पर उतरती हुईअपनी परंपरा स्थापित करता रहा है। वह सामाजिक-सामूहिक जीवन से सम्बद्ध है, वह भूमिपुत्र है, और निर्वैयक्तिक है। वह अपनी विकास परंपरा में देश-काल से प्रभावित हो, उसके तत्वों को ग्रहण करता हुआ तथा उनकी उपेक्षा करता हुआ, अपनी परंपरा तथा निरंतरता बनाता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि लोकगीत क्या है? सामान्यत: जिसे गीत कहते हैं, उससे इसमें क्या भिन्नता है? साहित्यिक गीत तथा लोकगीत में क्या भेद है? लोकगीत की परिभाषा अत्यंत संक्षेप में यह की जा सकती है – वह गीत, जो लोक-मानस की अभिव्यक्ति हो अथवा जिसमें लोक-मानसाभास हो। वस्तुत: लोकगीत, लोक की परंपरागत विरासत है, अनुभूत-अभिव्यक्ति तथा हृदयोद्गार है और जीवन का स्वच्छ तथा साफ दर्पण है, जिसमें समाज के व्यक्त जीवन का प्रतिबिंब दिखायी देता है।

लोकगीतों की कतिपय परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं –

 “This primitive spontaneous music has been called folk song”28

“लोकगीत तो स्वत: जन्मा है ।”29

“आदिमानव के उल्लासमय संगीत को ही लोकगीत कहते हैं।”30

“लोकगीत न तो नया होता है न तो पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जड़े भूतकाल की जमीन में गहरी धंसी हुई है, परंतु जिसमें निरंतर नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं|”31

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में यह मत भी व्यक्त किया गया है कि कोई भी संगीत यहां तक कि कैसा ही संगीत क्यों न हो, वह लोक गीतों पर ही निर्भर है। संगीत की दृष्टि से , लोकगीत बिना किसी वाद्य-यंत्र के, स्वाभाविक एवं ह्रदय-स्पर्शी स्वरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक गीत मानव जाति के ह्रदय से, अपने अनुभवजन्य प्रकृति-प्रदत्त आवाज के द्वारा अचानक घुमड़ कर प्रकट होने वाला संगीत है, जो ह्रदय का बोझ हलका करने के लिये एवं भावो की अभिव्यक्ति के निमित्त बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा व्यक्त किया जाता है। लोकगीतों में साधारण जनता की मधुर भावनाओं एवं जटिल समस्याओं का सुन्दर चित्रांकन मिलता है। हर एक राष्ट्र का इतिहास, लोक की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर आश्रित रहता है, जिसका अनुभव हमें लोक गीतों द्वारा प्राप्त होता है। इनमें जन-मानस, देश-काल और मानव मात्र की स्थिति का सम्पूर्ण वर्णन और प्रतिफलन मिलता है।

लोकगीतों के अनादि उद्गम के प्रति चिंतन करते हुए देवेन्द्र सत्यार्थी लिखते हैं – “कहाँ से आते हैं इतने गीत, स्मरण – विस्मरण की आँख मिचौली से। कुछ अट्टहास से, कुछ उदास ह्रदय से, कहाँ से आते हैं इतने गीत, जीवन के खेत में उगते हैं ये गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी पर ये सब हैं, खाद । जीवन के सुख – दुःख, ये हैं लोकगीतों के बीज ।“32 एक स्थान पर उन्होंने बहुत ही सारगर्भित वाक्य लिखा था कि – “लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं ।”33

डॉ.आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी लोकगीत की व्याख्या करते हुए लिखते हैं – “लिखाई – पढ़ाई से अनभिज्ञ ग्रामीण जनता के द्वारा रसोद्वेग में गाये जाने वाले सुमधुर गीत ही लोकगीत हैं । कानों से कानों तक ही इनकी संप्रेषणीयता कायम हैं।भौतिक सुख सुविधाओं की पूर्ति के लिए और जीविका चलाने के लिए किसी भी राजाश्रय में लोकगीत पुष्पित – पल्लवित नहीं हुए हैं। ग्रामीण जीवन के कटु अनुभवों से उत्पन्न होकर उनके ह्रदय से गूंज उठने वाली सहज कविताएँ ही लोकगीत है।”34

लोकगीत के अकृत्रिम रूप सौन्दर्य को उद्घाटित करते हुए सत्यव्रत अवस्थी लिखते हैं – “लोकगीत प्रकृत काव्य है। वह लोक ह्रदय की सरल स्वाभाविक एवं संगीतमय अभिव्यक्ति हैं। मानव जाति के ह्रदय से, अपने अभावों द्वारा जन्मी, प्रकृति-प्रदत्त ध्वनि द्वारा सहसा घुमड़ कर प्रकट होने वाली उल्लासमय संगीत लहरी है, जो ह्रदय का भार हल्का करने के लिए भावों की अभिव्यक्ति हेतु बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा व्यक्त होती है |”35

“इन लोकगीतों में न कला है, न भाषा-सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बंद कमरों में ही की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए लोक मानव ने गाया है । चूल्हे पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये हैं, जिस समय अन्तर को जो भी स्पर्श कर गया तुरंत वही भाव बोल चाल की भाषा में गीत बन कर फूट पड़ा।”36

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ठीक ही लिखते हैं – “लोकगीतों का समस्त महत्त्व उनके काव्य और सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक महत्वपूर्ण कार्य है एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन, जो अब तक या तो विस्मृत के गर्भ में डूबी हुई है या गलत समझ ली गई है ... लोकगीतों का महत्त्व मोहें जो दड़ो के भग्न स्तूपों के अवशेष एवं ईंट-पत्थर के टुकड़ों से कहीं अधिक है। पुरातत्व के यह अंश – अंश हमारे इन गीतों के भाष्य का काम देते हैं।37

डॉ.श्याम परमार इस विषय में लिखते हैं –“इन गीतों के प्रारंभ के प्रति हमारे पास एक संभावना है, पर उसके अन्त में कोई कल्पना नहीं । यह वह बड़ी धारा है, जिसमें अनेक छोटी-छोटी धाराओं ने मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना रहा है सदियों के घात – प्रतिघात ने उसमें प्रश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने उसमें मन के ताने-बाने बुने हैं। स्त्री-पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावटें दूर की है।”38

लाला लाजपत राय ने लिखा है कि – “देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।“39

‘लोकगीत’ क्या है? इस प्रश्न का अत्यंत सारगर्भित उत्तर देते हुए डॉ.सत्येन्द्र लिखते हैं – “वह गीत जो लोक मानस की अभिव्यक्ति हो, अथवा जिसमें लोक मानसाभास भी हो लोकगीत के अंतर्गत आएगा। .... लोकगीतों के शब्दों में लोक-मानस परक अथवा आदिम प्रवृत्ति के जैसा एक प्रभाव होता है, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, केवल जिसे अनुभव किया जा सकता है। उसमें आदिम मानवीय भावना के उत्तराधिकरण का एक रहस्य भिदा रहता है। उसमें जैसे एक रोना रहता है। लोकगीत जैसे एक दैवी –वाक्य है, जिसका न कोई निर्माता है न स्वर संधाता। वह जैसे मानव-समुदाय में सहज ही स्वयं ही उद्धरित हो उठा है, और बिना प्रयास के सहज ही कंठ से कंठ पर उतरते हुए अपनी परंपरा स्थापित करता करता रहा है। वह सामाजिक समुदायी जीवन से सम्बद्ध रहता है, यह भूमिपुत्र है और निर्वैयक्तिक है, वह अपनी विकास – परंपरा में देशकाल से प्रभावित हो, उसके तत्वों को ग्रहण करता हुआ फिर प्रवृत्ति: उन देश-कालों के प्रभावों का संक्रमण करता हुआ उनकी उपेक्षा करता हुआ, अपनी मूल मानवीय मानसता के सत्व में उन्हें समाहित कर अपनी परंपरा और निरंतरता बनाता है।40

झवेरचंद मेघाणी के शब्दों में “जेना रचनारा ए कदी कागळ के कलम पकड्याँ नहीं होय, ए रचनारां कोण तेनी ज कोई नेखबर नहीं होय, अने प्रेमानंद के नरसिंह महेता नी पूर्वे केटलो काळ वींधीने ए स्वरो चाल्या आवे छे तेनीय कोई भाळ नहीं लई शक्युं होय तेनुं नाम लोकगीत।”41 अर्थात जिसके कर्ताओं ने कभी कागज़ या कलम नहीं पकडे होंगे, इनके कर्ता कौन हैं, इसकी किसी को सूचना नहीं हो, और प्रेमानंद या नरसिंह महेता के पहले से कितने समय के काल का वेधन करते हुए ये चले आते हैं उसकी कोई कल्पना नहीं कर सका हो उसका नाम लोकगीत हैं।

नरोत्तम दास स्वामी एवं सूर्यकिरण पारीक ने लिखा है कि – “आदिम मनुष्य ह्रदय के गानों का नाम लोकगीत है । मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसके उमंग की,उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख दुःख की..... कहानी इसमें चित्रित है।.....काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता।...किसी भी कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया पर ये अमर है।“42

गुलाबराय ने लिखा है – “लोकगीतों के निर्माता प्राय: अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी रखता है, वे लोकभावना में अपना भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किंतु उनमें साधारणीकरण एवं सामान्यता कुछ अधिक रहती है।“43

डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है, “लोकगीत कि एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ और खण्डिताएँ न्योछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से विभूषित होने पर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिये किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं। ये अपने आप में परिपूर्ण हैं।”44

“समस्त जन-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएं गीत-बद्ध होकर व्यक्त हुईं, उनके लिए लोकगीत उपयुक्त शब्द है।”45

अतः हम कह सकते हैं की “ सामान्य लोकजीवन की पार्श्वभूमि में अचिंत्य रूप से स्वत: ही फूट पड़ने वाली, मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।”

हमारे यहाँ लोक गीतों की परम्परा बहुत पुरानी है। वाल्मीकि और व्यास, भास और कालिदास तथा कबीर, तुलसी व सूर की कविताओं का तो समय निश्चित है, पर गीतों की रचनाओं का कोई समय निश्चित नहीं है। वेदों के मंत्रदृष्टाओं का तो पता है, पर गीतों के रचयिताओं का पता नहीं है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थानों पर गीतों के गाये जाने के उल्लेख मिलते हैं किन्तु इनकी उत्पत्ति का समय और स्थान उपलब्ध नहीं होता। यह गीत रचने वालों की दृष्टि से अनाम और व्यक्तित्व की छाप से मुक्त होते हैं। किन्तु ऐसे सुन्दर एवं सरस गीतों की रचना करके समाज अपने नाम, ग्राम और समय की चिन्ता किये बिना अपनी अभिव्यक्ति कर लेता है। गीतों का सृजन मानव उत्पत्ति के साथ ही हुआ ज्ञात होता है। इनकी प्राचीनता का पता हमें संस्कृत के आदि ग्रंथों से मिलता है। ऋग्वेद में गाथिक शब्द है। वह गाने के काम में लिया गया है। वैवाहिक गीतों के लिये नराशंसी अथवा रैमी नाम के शब्द रूप भी मिलते हैं। उक्त समय की सारी पद्यबद्ध गाथाएं मंगल अवसरों पर गाई जाने वाली पड़ती है। ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में इस समय की अनेक गाथाओं से लोक गीतों की साकारता के प्रमाण मिलते हैं। ब्राह्मणग्रंथों में ऋक् को देवी से और गाथा को मानवी से संबंधित बताया गया है। अतएव गाथा शब्द के संबंध से लोक गीत की प्राचीनता का पूरा पता लग जाता है। महाभारत के आदिपर्व की बहुत सी गाथाओं के रूप भी अति प्राचीनतम हैं। गीत उल्लसित लोक-मानस से निकलने वाली अटूट धारा है, जिसका लोक प्रतिभा द्वारा विभिन्न अवसरों पर सृजन एवं गान होता आया है। यह कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अधिक किया जान पड़ता हैं। गीतों की अनाम रचना करने में महिला समाज की अपनी विशिष्टता तथा अपना योगदान रहा है।

लोकगीत आदि-मानव के आनंदावेशमय उद्गार हैं। ये जन साधारण की प्रफुल्लित एवं मस्त अनुभूतियों के अजस्त्र स्त्रोत हैं। आदिम-मानव ह्रदय की भावनाओं का यह भंडार अपनी संजीवनी शक्ति के बल पर अब तक जीवित है और एक ह्रदय से दूसरे ह्रदय में प्रतिध्वनित होता हुआ चला आ रहा है। इसमें विशाल लोक समूह की भव्य भावनाएँ भरी रहती हैं।

 लोक साहित्य में लोकगीत अमूल्य हीरे हैं। इनका प्रादुर्भाव मानव वाणी के साथ ही हुआ है। इस तरह के लोक गीत विश्व भर के समस्त राष्ट्रों में पाये जाते हैं। ये मौखिक परंपरा पर ही आश्रित रहे हैं और ये कला गीतों से पृथक होते हैं। कला गीत साहित्यिक परम्परा में आते हैं। पर लोकगीत केवल अनुश्रुति पर ही अवलंबित रहते हैं। लोक(जन साधारण) में कलामय काव्यक्रम प्रचलित होता है। संत साहित्य परंपरा –श्रुत होकर भी काव्यकला प्रवीण होता हुआ साहित्य के नजदीक पहुंच जाता है।

**वर्गीकरण**

लोक-गीत : लोक-साहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन-जीवन में अपनी प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है । इनका विभाजन प्रधानतया निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है।

१. संस्कार गीत ।

२. देवी-देवताओं के गीत ।

३. ऋतुओं के गीत ।

४. व्रत एवं त्यौहारों के गीत ।

५. श्रम-गीत ।

**पण्डित रामनरेश त्रिपाठी** ने ग्रामगीतों का वर्गीकरण निम्नलिखित ग्यारह श्रेणियों में किया हैं46 :-

1. संस्कार संबंधी गीत
2. चक्की और चरखे के गीत।
3. धर्म गीत।
4. ऋतु-संबंधी गीत।
5. खेती गीत
6. भिखमंगी गीत
7. मेले के गीत
8. जाति गीत
9. वीर गाथा।

 १०.गीत-कथा ।

 ११.अनुभव के वचन।

इस उपर्युक्त वर्गीकरण पर सम्यक दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि त्रिपाठी जी का यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। चक्की और चरखे के गीतों का अंतर्भाव वर्तमान लेखक द्वारा प्रतिपादित श्रम-संबंधी गीतों में हो जाता है। धर्म-गीत व्रत गीतों का ही दूसरा नाम है। खेती,भिखमंगी और मेले के गीतों की कोई अलग श्रेणी नहीं है। वे विविध गीतों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। वीरगाथा और गीत-कथा को लोकगाथा के भीतर माना जा सकता है। अनुभव के वचनों को हम सूक्ति या अनुभुतिपूर्ण उक्ति मात्र कह सकते हैं, लोकगीत नहीं। इस प्रकार त्रिपाठी जी के ग्यारह भेदों का अंतर्भाव हमारे छ: भेदों के अंदर ही हो जाता है।

राजस्थानी लोकगीतों के विद्वान् पारखी पं**. सूर्यकरण पारीक** ने अपनी पुस्तक में राजस्थानी गीतों का क्षेत्र-विस्तार दिखलाते समय इन्हें निम्नांकित उनतीस भागों में विभक्त किया है47 :-

1. देवी-देवताओं और पितरों के गीत।
2. ऋतुओं के गीत
3. तीर्थों के गीत
4. वृत्त-उपवास और त्योहारों के गीत।
5. संस्कारों के गीत।
6. विवाह के गीत।
7. भाई-बहन के प्रेम के गीत।
8. साली-सालेल्याँ(सरहज) के गीत
9. पति-पत्नी के प्रेम गीत।
10. पाणिहारियों के गीत।
11. प्रेम के गीत।
12. चक्की पीसते समय के गीत।
13. बालिकाओं के गीत।
14. चरखे के गीत।
15. प्रभाती गीत
16. हरजस-राधा-कृष्ण के प्रेम के गीत।
17. धमालें-होली के अवसर पर पुरुषों द्वारा गेय गीत।
18. देश-प्रेम के गीत।
19. राजकीय गीत
20. राज-दरबार, मजलिस, शिकार, दारु के गीत।
21. जम्मे के गीत (वीरों, सिद्ध पुरुषों, महात्माओं की स्मृति में रखे गये जागरण को ‘जम्मा’ कहते हैं)
22. सिद्ध पुरुषों के गीत।
23. क-वीरों के गीत।

 ख-ऐतिहासिक गीत

1. क – ग्वालों के गीत।

 ख – हास्य रस के गीत।

1. पशु-पक्षी संबंधी गीत।
2. शांत रस के गीत।
3. गाँवों के गीत (ग्राम-गीत)
4. नाट्य गीत
5. विविध।

इस श्रेणी विभाजन के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमें कोई क्रम नहीं दिखायी पड़ता है। पारीक जी ने हास्य, श्रृंगार और वीर रस के गीतों को तीन श्रेणियों में पृथक-पृथक रखा है, जिनको एक ही वर्ग में रखा जा सकता है। इसी प्रकार भाई-बहन और पति-पत्नी के गीतों का अंतर्भाव संस्कार या ऋतु संबंधी गीतों में किया जा सकता है।

डॉ.**शकुंतला वर्मा** ने लोक गीतों को तीन रूपों48 में यथा

1. संस्कार गीत
2. पर्वगीत
3. श्रृंगार गीत

डॉ. **गोविंद चातक** ने पाँच प्रकार49 के लोकगीतों यथा

1. धार्मिक गीत
2. संस्कार गीत
3. ऋतु गीत
4. प्रणय गीत
5. विविध गीत – भ्रम, जाति, हास्य, व्यंग्य, ऐतिहासिक तथा सामयिक की चर्चा की हैं

हरियाणा प्रदेश के लोक साहित्य का अध्ययन करने वाले डॉ.**शंकर लाल यादव** ने लोकगीतों के दो आधार बतलाये हैं50 :-

1. **मुक्तक या लघु गीत –** संस्कार संबंधी (जन्म, विवाह, मृत्यु) ऋतु संबंधी (व्रत, पर्व, त्योहार, देवी, माता, जाता, मल्लार, भजन आदि) कृषि संबंधी, राजनीति संबंधी, अन्य (पनघट, हुचकी, हास्य रस के गीत) तथा
2. **कथात्मक (प्रबंधगीत)** राग, किस्सा, गाथा व अवदान, पंवारा, देवी की यात्रा

डॉ. **विद्या चौहान** ने लोकगीतों को निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है51

1. संस्कार गीत
2. जन्म संस्कार संबंधी गीत।
3. यज्ञोपवीत संस्कार संबंधी गीत।
4. विवाह संस्कार संबंधी गीत।
5. मृत्यु संस्कार संबंधी गीत
6. ऋतु संबंधी गीत।
7. व्रत एवं उपासना संबंधी गीत
8. जाति संबंधी गीत
9. विविध गीत

श्री **भास्कर रामचन्द्र भालेराव** जी ने लोकगीतों का बहुत विस्तार से वर्गीकरण किया है52 –

1. **संस्कार विषयक**
2. पुत्र जन्म सोहर
3. चरुबा गीत
4. चौक के गीत
5. साध के गीत
6. करौंधनी कंदोरा बांधने के गीत
7. मुंडन
8. जनेऊ
9. मामा के यहाँ पहली बार जाने के गीत
10. पहली बार बारात में जाने के गीत
11. टीका
12. विवाह
13. द्विरागमन
14. तिरागमन अर्थात रोने के गीत
15. सामधियों के आने के गीत
16. गौदान, देवस्थापन, पुराण बैठाने, कूप खनन, गृहारण्य के गीत
17. तीर्थ यात्रा और गमन-आगमन के गीत
18. अन्नप्राशन के गीत
19. पलने के गीत
20. अवरनी-गर्भवती स्त्री विषयक
21. माता कढ़ने के गीत – भेंट
22. जेवनार
23. पक्षल बाँधनवि खोलना
24. भरनी या ठाँक के गीत (सांप काटने पर)
25. मेले के गीत
26. जन्मगाँठ के गीत
27. छात्री स्थापना के गीत ।
28. **माध्वारी गीत**
29. बारहमासा
30. नोरता – नौरात्र – चैत्र आश्विन
31. रामनौमी
32. आरवातीज
33. दसहरा (जेठ आश्विन)
34. देवशयनी, देवउठाव
35. सावन:हिंडोला
36. सांझी (झेंझी हंडी के गीत)
37. झांझी
38. बीजा मिट्टी के गीतटेसू
39. कृष्ण जन्माष्टमी
40. करवा चौथ
41. महालक्ष्मी
42. बछवाछठ
43. मोरछठ
44. नौदुर्गा
45. गनगौर
46. कार्तिक और माघ – स्नान के गीत
47. टोली
48. अहोरी ओंठे कार्तिक के गीत
49. कजरिया तीज
50. भुजरिया ।
51. **सामाजिक – ऐतिहासिक**
52. चन्द्रावल
53. बेलासत्ता
54. ठोला मारू
55. हर दौल
56. बाबू के गीत
57. कारसदेव के गीत
58. कुंवर के गीत
59. हिरामन
60. नगरा
61. मन्नादेव
62. पंडत मेहतर
63. जाहरपीर
64. अलरा
65. हिलों के, गुजरों के गीत
66. कन्हैया
67. सलगा सदावृक्ष
68. गोरा बादल
69. बुलाकीदास
70. घासीराम पटेल
71. पापूजी के गीत
72. राजा केवट
73. ओरवाजी
74. तेजाजी
75. गोराजी
76. भेरूजी ।
77. **विविध**
78. खेती की कहावतें
79. ऊख की फसल होने के गीत
80. बारी पूलने के गीत
81. जात व चक्की के गीत
82. लावनी
83. रसिया
84. ख्याल
85. छून्दरा
86. दोहे-साखी
87. सोरठे
88. सवैये
89. भजन
90. कवित्व
91. सिन्धु
92. धौल

सोहन दान चारण ने राजस्थानी लोकगीतों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में कियाहै|53

**अ.गायक ही श्रोता**

१. संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,

२. पर्वों के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत

३. श्रम –गीत

४. विविध अवसरों पर गाये जाने वाले बाल-गीत ।

**आ. गायक पृथक- श्रोता पृथक**

१. संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,

२. सामाजिक समारोहों (महफ़िल) में गाये जाने वाले लोक-गीत ।

 गुजरात के प्रसिद्ध लेखक **खोडीदास परमार** द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण54

**१.लग्न प्रसंगनां मांगलिक अने अन्य लोकगीतों**

* 1. वेविशाळनां गीतो
	2. लग्न लखती वेळानां गीतो
	3. सांजीनां गीत
	4. मंडपारोपणनां गीतो
	5. चाक वधाववानां गीतो
	6. गोतारड़ो के गोतीडो भरवानां गीतो
	7. ढोल पूजननां गीतो
	8. फुलेकानां गीतो
	9. पस भरवानां गीतो
	10. उकरडी नोतरवानां गीतो
	11. जड वाहवानां गीत
	12. पीठीनां गीतो
	13. वानानां गीतो
	14. प्रभातियां मंगल गीतो
	15. लाडाने घेर रांदलनां गीतो
	16. वर-लाडानी जान प्रस्थाननां गीतो
	17. ‘जोतर ढाळानां’ गीतो
	18. छाबनां के ‘गोळ खावानां’ गीतो
	19. मोसाळानां गीतो
	20. सामैयानां गीतो
	21. हस्तमेळाप – हथेवाळांनां गीतो
	22. जान जमवा बेसे ते टाणे समस्या, हरियाळी अने फटाणानां गीतो
	23. चॉरी – सप्तपदीनां गीतो
	24. ‘मांडवो वधाववानां’ अने ‘जान विदायनां गीतो
	25. जान वळाववानां गीतो
	26. कन्या वळामणानां गीतो
	27. मींढळनी गांठ छोडवानां गीतो
	28. ‘उकरडी’ उठाववानां गीतो

**२. सीमंत – अघरणीनां गीतो**

* 1. अघरणीनां दिवसे रांदल तेडवानां गीतो
	2. घेण्यने नवराववा लई जती वखतनां गीतो
	3. घेण्यने ‘पगलां भरावे’ ते समयनां गीतो अने फटाणां
	4. ‘खोळो भरवो’ नी विधि वखतनां गीतो
	5. ‘खोळो भर्या’ पछीनां रांदलनां प्रशस्ति गीतो
	6. राते-रांदल सामे ‘घोडो खूंदवो’ नां गीतो
	7. बीजी सवारे रांदलने वळाववानां गीतो

**३. बाळ – हालरडां**

1. वात्सल्य भाव अने बाळप्रशस्तिनां हालरडां
2. बाळ – हूमलामणनां हालरडां
3. राम, कृष्ण अने बीजां बाळलीला वर्णवतां प्रकीर्ण हालरडां

**४. बाळ – जोडकणां अने अन्य**

1. बाळको शब्दानुरव साथे प्रयोजी शके तेवां जोडकणां
2. सर्वजन उपयोगी ज्ञान, बुद्धि साथे शीख, डहापणनां जोडकणां

**५. उजळियात वर्णमां ‘बडवा’ ने जनोई संस्कारनां विविध गीतो**

1. सांजीनां, मंडपारोपणनां, ‘जनोई’ पहेरावे वगेरे प्रसंगनां

**६. कन्या – किशोरीओनां मोळाकत(गौरीव्रत) नां गीतो**

1. रमत रासडा
2. ‘देदो’ कुटवानां छाजिया

**७. तुलसी विवाहनां गीतो**

**८. सौभाग्यवती अने प्रौढ़ स्त्रीओनां व्रत- वरतुलां**

1. काठा गोरनां गीतो
2. श्रावण के अधिक मासमां गवातां ‘झीलणिया’
3. कीर्तन
4. जया – पार्वती के ‘अेवरत जीवरत’ नां व्रतगीतो

**९. नारीसमूहना रासडा**

1. उभा रही – एक ताळी साथे गवाता रासडा
2. फरतां फरतां लेवातां त्रण त्रण ताळीनां ‘उलाळीया’ रासडा अने ‘टप्पारास’

**१०. गरबा, मांडवडी वगेरे**

1. आद्याशक्ति – अंबा – शिव, सूर्य-रयणी, धरती – सूरज वगेरेना साहित्यिक गरबा
2. देवीनां प्रशस्ति गीतो
3. सात वार, पंदरतिथि अने बारमास वगेरेनां पण गरबा – रासडा अने बारमासी गीतो

**११. मांगलिक प्रसंगनां धोळमंगळ**

**१२. श्रमहारी गीतो**

1. घंटीए दळतां गावानां
2. रेंटियो कांततां गावानां
3. वाडी, खेतरमां नींदणी – पारणी वखते गवातां
4. मलामानो चूनो खांडती वखते गवातां
5. मकाननी छोबंध के भोंयतळिये टीपणी टीपतां गवातां श्रमहारी गीतों

**१३. मृत्यु पछीनां शोक अने प्रशस्तिनां छाजियां**

**१४. आनंदप्रमोदनां बौद्धिक गीतो**

1. खायणां
2. हरियाळी के समस्यानां गीतो

श्री **कनुभाई जानी**  द्वारा प्रस्तुत गुजराती लोकगीतों का वर्गीकरण

1. **संसार अने संस्कार संबंधी**
2. जन्म
3. हालरडां ने बाळगीतो
4. सीमंत
5. रांदल
6. जनोई
7. मरशिया वगेरे
8. लग्न
9. स्नेह
10. स्त्री-पुरुष, भाई-बहेन, वात्सल्य वगेरे

**२. ऋतु**

1. भडळी/ वर्तारा
2. गोप, दुहा, सोरठा वगेरे
3. वार, तिथि, महिना वगेरे
4. नवरात्री

**३. व्रत**

1. तुलसी
2. गौरी
3. वट – सावित्री
4. शीतळा सातम वगेरे

**४. श्रम**

1. कोश हांकता
2. खांडतां- दळतां
3. टीपतां (टीपणी)
4. वावणी
5. होबेलां
6. मारतां (रबारी – भरवाड वगेरे)

**५. भक्ति, चिंतन-ज्ञान बोध**

1. भजन
2. पद
3. गरबा-गरबी
4. भवाई ने लोकनाट्य नां गीतो

**६. प्रकीर्ण**

1. मुक्तको
2. समस्या
3. दुहा, सोरठा
4. रमतगमत
5. बुद्धिचातुरी

**डॉ.अमृत पटेल द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण55**

1. **देश – प्रदेशनी दृष्टिए प्रकारो**
2. नगरनां के शहेरनां लोकगीतो
3. ग्राम लोकगीतो
4. पहाड़ी विस्तारनां लोकगीतो

**२. भिन्न भिन्न जाति आधारित लोकगीतो**

1. भरथरीनां गीतो
2. भिखारीनां गीतो
3. साधुनां गीतो

**३. लोकोनी उंमर पर आधारित गीतो**

1. बाळकोनां गीतो
2. युवको-युवतीओनां गीतो
3. वृद्धोनां गीतो

**४. लिंगभेदनी दृष्टिए लोकगीतोना प्रकारो**

1. स्त्रीओनां गीतो

(ख) पुरुषोनां गीतो

(ग) हीजडाओनां लोकगीतो

**५. धार्मिक लोकगीतो**

1. जन्म संबंधी लोकगीतो
2. विवाह-लग्न संबंधी लोकगीतो
3. शीतळा सातमनां गीतो
4. गोकुळाष्टमीनां गीतो
5. मरणगीतो के मरशिया
6. विविध व्रत संबंधी गीतो
7. पूजन संबंधी गीतो

**६. मानवक्रिया पर आधारित लोकगीतो**

1. टीपणीनां गीतो
2. रोपणीनां गीतो
3. कापणीनां गीतो
4. घाणीनां गीतो
5. कुंभारना माटला घडती वखतनांगीतो
6. रबारी/भरवाडनी पशु चारती वखतना रागडा के रेगडी

**७. ऋतु प्रमाणेनां गीतो**

1. चोमासु –गीतो (अषाढ़ी गीतो)
2. फागणनां गीतो
3. वसंतनां गीतो

**८. लोकगीतोना स्वरुप पर आधारित प्रकारो**

1. लोकोर्मिगीतो (पछी ते नानां होय के मोटां, अंग्रेजी प्रमाणो Folk lyrics नो विभाग)
2. हालरडां
3. नृत्यगीतो
4. कथागीतो(Ballads)
5. लोकाख्यान (कथा –आधारित, प्रमाणमां सारी पेठे दीर्घ, एक कथाना अनुसंधानमां अनेक प्रसंगो जेमां गूंथाया होय तेवां गीतो)

(च) लोक महाकाव्य (Folk epic)

(आखेआखां रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यो पोतानी रीते लोककंठे परंपराथी आव्यां होय, प्रसंगादि जेमां आव्या होय छे)

**झवेरचंद मेघाणी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण56**

गुजराती लोकगीतों में मेघाणीजी ने प्रमुख शाखाओं का विवरण दिया है जैसे –रासडा, कीर्तनो, धोळ, सळुका, रामवाळा, कृष्णावाळा, भजनों और दुहाओं । बाद में सिर्फ ‘रासडा’ के अनेक प्रकार बताये है जैसे – कथागीतो(Ballads), ऊर्मिगीतो, ऋतुगीतो, बालगीतो संचारचित्रो और मर्मगीतो। इस प्रकार ‘रासडा’ को छ भागों में विभक्त करते हुए उसके कथागीत या गीतकथा के प्रकारों का सुंदर एवं विशद् विवरण देते हैं। वे लोकगीतों के अन्य प्रकारों के प्रकार की द्रष्टि से विवरण न देते हुए उन्हें लग्नगीतो, हालरडा-बालगीत, ऋतुगीत तथा खायणां के गीतों की सुंदर समालोचना देते है। ठीक इसी तरह वे ‘धरतीनुं धावण भाग-२ में व्रतगीत तथा रासमिमांसा के बारे में लिखते है। मेघाणीजी वर्गीकरण की दृष्टि से आगे न बढ़ते हुए विवरण और रसदर्शन की दृष्टि से आगे बढे है।

मेघाणी ने लोकगीतों को वर्गीकरण की दृष्टि से न देखते हुए उसके ढांचे को ध्यान में रखकर उसका वर्गीकरण किया है। वह समय था सन -1927 जब की वर्गीकरण या उसका विज्ञान उनके ख्याल में नहीं था। उस समय में वर्गीकरण का महत्व उतना स्थापित नहीं था। पश्चिम के देशों में शायद तत्काल समय में वैज्ञानिक वर्गीकरण शुरू हुआ होंगा लेकिन भारत में तो उस समय ‘लोकगीत’ कहें या ‘जनगीत’ इसकी चर्चा चल रही थी। अब जब ग्रामगीत की बात चल रही हों तो उसका वर्गीकरण भी उसकी मर्यादा में होंगा, लोकगीत की व्यापकता में नहीं। सारे लोकगीत सिर्फ ‘रासड़ा’ यानी लोकगीतों की प्रमुख शैली में नहीं लिए जाते- लग्नगीत भी लोकगीतों की एक प्रमुखशाखा हैं। साथ ही हालरडा या बालगीत में से बहुत कम गीत ‘रासडा’ के अंतर्गत आयेंगे। जब की अनेक अवसर पर गाये जाने वाले एवं दैनिक क्रियाओं में गाये जाने वाले गीतों का भी ‘रासडा’ में समावेश नहीं हो सकता। उल्टा ‘सळुका’ को लग्नगीत के अंतर्गत रख सकते हैं।

लोकगीतों का वर्गीकरण करना इतना सहज व सरल नहीं होता है। लोकसाहित्य के मूर्धण्य अध्येता तथा गंभीर चिंतक मनीषि डॉ. सत्येन्द्र ने लोकगीतों की विपुल संख्या को वर्गीकृत निम्न प्रकार से किया है।57

**लोकगीतों का वैशिष्ट्य**

‘हरि अनंत हरि कथा अनंता’ की ही भाँति लोकगीतों की विशेषताओं को समेटना भी दुष्कर है। जीवन के अनुभवों का यह रागात्मक अभिव्यंजन है। लोकगीत रस के निर्झर हैं। लोकगीत स्वत: स्फूर्त भावोच्छवासों का सहज व् सरस, अकृत्रिम व संगीतपूर्ण उद्गार हैं। लोकसमाज रासोद्वेग है। यह मनोजन्मा है। इसका रचनाकार रचनास्थल व रचनाकार तीनों ही अज्ञात हैं। इसका कोई मूल पाठ नहीं है। स्थानीय संस्कृति का रंग ही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। प्रत्येक प्रान्त की आत्मा इन लोकगीतों की दुनिया में विश्राम लेती है। इसीलिए इनमें अपूर्व आनंद दायक संप्रेषणीयता है। मौखिक होते हुए भी लोकगीत अक्षय हैं। भाषा की सहज स्वाभाविकता व् स्पष्टता इन गीतों का प्राण हैं। यह रस छंद, अलंकार के बंधनों से बंधा नहीं बल्कि रस सरिता में मुक्त कल्लोल करने वाली मीन है। गेयता व संगीतात्मकता इसकी रसमयी संप्रेषणीयता की मूल शक्ति हैं। लोकगीत अजातशत्रु हैं, अपराजेय हैं। कालचक्र भी इनके समक्ष नतमस्तक है। सामान मानव ह्रदय का अकाट्य प्रमाण लोकगीत भाषा व स्वरुप में भले ही भिन्न लगते हों लेकिन विषयानुभूति सार्वजनीन है। यह भारत की सांस्कृतिक एकता के रचनात्मक प्रमाण है जो लोकमानस के द्वारा रचित हुए हैं। भाषा का चोला भले ही बदल गया हो, भावात्मा में कहीं भी दुराव या छुपाव नहीं है। इनमें अलंकरण के प्रति आग्रह न होकर भाव सबलता व प्रवणता के प्रति अधिक लगाव रहता है, इसीलिए लोकमानस इन्हें गाते समय अपने कंठ माधुर्य के प्रति इतना सजग नहीं होता जितना गाते समय आनंदजन्य उल्लास की उर्जस्वी अनुभूति करने में रसमग्न होता है। लोकगीत लोकमानस की कालजयी यात्रा के कीर्तिस्तंभ हैं।

लोकगीतों का महत्त्व अनेक कारणों से सर्वमान्य हो चुका है। संसार के समस्त झगड़ों तथा लड़ाइयों का मूल मानव की अहं चेतना एवं अहं भाव ही है। व्यक्तिगत अथवा वर्गगत स्वार्थ, शोषण, उत्पीड़न, और उनसे उत्पन्न होनेवाले सभी प्रकार के झगड़ों का बीज मानव की अहं चेतना की विकृति ही है। इसी अहं भाव की विकृति के परिणाम स्वरुप – व्यक्ति व्यक्ति का, देश देश का तथा एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का शत्रु बना हुआ है। लोकगीत मानव की अहं चेतनाशून्य अभिव्यक्ति होने के कारण ऐसा सामान्य धरातल है, जहाँ सभी ममत्व और परत्व की भावना से ऊपर उठकर एक हो जाते हैं। व्यक्तिगत तथा वर्गगत – सभी भेदभाव की दीवारें गिराकर, मानवता के सामान्य धरातल को स्पर्श करने की प्रेरणा यहीं से मिलती है। सम्पूर्ण सृष्टि लोकगीतों के माध्यम से एकता के सूत्र में बंधकर विश्वबंधुत्व की भावना से ओतप्रोत हो जाती है जो वर्गहीन समाजवाद का उच्चतम उदाहरण है। इस प्रकार लोकसाहित्य अथवा लोकगीत विश्वबंधुत्व और विश्वप्रेम की भावना की ओर जन-मन को प्रेरित करने में विशेष महत्त्व रखता है ।

 लोकगीतों सम्बन्धी सामग्री, विषय के शास्त्रीय अध्ययन के लिए भी महत्त्व रखती है जिसका अन्य सामजिक विज्ञानों से निकट का संबंध है। वस्तुत: लोकगीतों का शास्त्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्व है। लोकगीत लोकाभिव्यक्ति के प्रत्येक रूप पर प्रकाश डालते हैं, और लोकाचार के प्रत्येक रूप की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। किसी भी देश अथवा समाज के लोकगीतों का अध्ययन उस देश की सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के विभिन्न पहलुओं और स्वरूपों में व्यक्त उस समाज की आकांक्षाओं और इच्छाओं का सूक्ष्म अवलोकन कराता है। सम्पूर्ण संस्कारों – जन्म, जीवन-मरण आदि – का लेखा-जोखा लोकगीतों में ही मुखर है। लोकगीत वस्तुत: उस मां की भांति है, जिसकी गोद में हमारा लालन-पालन हुआ है। लोकगीत उसी मां की वाणी है।

माताभूमौ पुत्रोऽहं पृथिव्या की भावना को लेकर ही हमें लोकगीतों के पास जाना चाहिए और उनके महत्त्व को समझना चाहिए जिनमें पृथ्वी गाती है, प्रकृति गाती है। मनुष्य की आत्मा गाती है।

लोकगीतों का गंभीर अध्ययन किए बिना जन-जीवन और जन-संस्कृति के मूल तक नहीं पहुंचा जा सकता इसलिए मानव के विकासक्रम और उसके मनोविश्लेषण में भी लोकगीतों का अध्ययन अपना विशेष महत्त्व रखता है। ....इनका एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन, जो अब तक या तो विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई या गलत समझती गयी है। ग्रामगीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) है। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्रामगीतों द्वारा आर्य-पूर्व सभ्यता का ज्ञान होता है। ईंट-पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्रामगीत का महत्त्व मोहंजोदाड़ो से कहीं अधिक है। मोहंजोदाड़ो सरीखे भग्नस्तूप ग्रामगीतों (लोकगीतों) के भाष्य का काम दे सकते हैं।

**लोकगीतों की विशेषता –**

 लोकगीतों की यह विशेषता है कि ये जीवन के साथ एकदम घुले मिले हैं। यह साहित्य जन-समुदाय का हीरकमंडित अमूल्य भूषण है। इसे ह्रदय का नवसर हार, कंठ का कंठाभूषण और कानों का श्रृंगार कहा जा सकता है। गीत जीवन के साथ तादात्म्य होकर चलते हैं। लोक इनकी आत्मा है और ये लोक की आत्मा हैं। किसी एक के नहीं, सारे लोक का अपनत्व इनमें निहित है। गीत जनता की मौखिक भावाभिव्यक्ति है, लिखित साहित्य नहीं। लिखित होने पर तो उन पर देश व काल की छाया दिखाई देने लगती है, मगर जन मानस का सरल स्वभाव उनसे कदापि अलग नहीं हो सकता। वह प्रेम और अभिन्नता को एकनिष्ठ भाव से व्यक्त करता रहता है। पल पल की पवित्र भावनाएं लोकगीतों में गुंफित हैं। पारिवारिक पोशाक का कौन सा ऐसा आंचल हैं, जो इन गीतों की लोकानुभूति से न गूंथा गया हो। जीवन की मृदुलता और कठिनाइयों की घड़ियाँ, दोनों ही दशाएं गीतों में आकर मिली हैं। ज्ञान की सरलता और सत्यता, विचारों की गंभीरता एवं व्यापकता इन लोक गीतों में ऐसी ओत-प्रोत हो रही है कि इनके कलात्मक महत्त्व को देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। ये गीत दुःख-सुख भरे जीवन के इन्द्रधनुष हैं। इनकी मौलिकता, विशेषता, आह्लाद, आह्वान और मर्म अपने ही निरालेपन में लवलीन हैं।

**गीतों का महत्त्व एवं उपयोगिता**

मनुष्य अपने सांस्कृतिक विकास में पीढ़ियों से राग-रंग रहस्य, एवं दुख-सुख की बातें लिये हुए चल रहा है। हर्ष और ख़ुशी में उसने गीत गाकर आनंद मनाया है और दुख व विषाद में भूलकर भी गीत द्वारा उसको सहन कर लेने की शक्ति पाई है। अत: कहना पड़ता है कि लोक गीत मानव जीवन को प्रमुदित करने वाली एक अचूक औषधि है। दुख-सुख के समय मानव मन में जैसे भी भाव उठे, वे सब रामबाण का काम कर गये। इनसे हमारी रागात्मक वृत्ति जागृत होती है, जिससे सारा संसार प्रिय भी लगता है। लोकगीत न होते तो दुखी और निराशामय संसार होता। लोक गीत विषाद को मिटाने, शोक को समेटने एवं दुख को मेटने वाले नित नये उपदेश हैं। विवाह, त्यौहार, पुत्र-जन्म पर हर्ष का भाव- तो बहिन और बेटी की विदाई पर ये लौकिक – दुख की तीव्रता को सहने की शक्ति देते हैं। कहीं कहीं मृत्यु के अवसर पर भी लोकगीत या भजन गाकर आपत्ति बेला को शीघ्रव्यतीत किया जाता है।

**संदर्भसूची**

1. सिद्धांत – कौमुदी,वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई 1989, पृ.416
2. हलायुध – कोश, सं.जयशंकर जोशी, पृ.581
3. हिन्दी शब्द –कल्पद्रुम सं.पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ.634-635
4. Webster’s New Twentieth Century Dictionary, p.681
5. Webster’s New Twentieth Century Dictionary, p.681
6. ऋग्वेद 10 । 90 । 14
7. सहस्त्राशीर्षा पुरुष: सहस्त्राक्ष सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात: - यजुर्वेद 31
8. जैमिनीय उपनिषद् – ब्राह्मण।3। 28
9. नाट्यशास्त्र, चौदहवाँ अध्याय, भरतमुनि
10. आदि पर्व 1 ।10-12 ।
11. गीता । 3 । 20 ।
12. जनपद, वर्ष-1. अंक-1, डॉ.हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.65
13. हिन्दी – साहित्य- कोश भाग-1 सं.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.747
14. सम्मेलन, लोक-संस्कृति विशेषांक, 2010, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ.65
15. वरदा , जनवरी 1958 वर्ष 1 अंक 1 {भारतीय संस्कृति में लोक – तत्व}, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल पृ.3-4
16. वरदा , जनवरी 1958 वर्ष 1 अंक 1 {भारतीय संस्कृति में लोक – तत्व}, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल पृ.11
17. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ॰ सत्येन्द्र, पृष्ठ-03
18. भारतीय लोक-साहित्य, डॉ.श्याम परमार पृ.9-10
19. गुजरात ना लोकगीतों, खोडिदास परमार, पृ.6-7
20. चम्पानी कलीओंमां कस्तुरी, अमृत पटेल, पृ.4
21. लोकविद्या – परिचय, डॉ. हसु याज्ञिक, पृ.5
22. बेला फुले आधी रात, देवेन्द्र सत्यार्थी,पृ.28
23. Encyclopedia Britannica.Vol.9,Page.887- ‘The primitive spontaneous music has been called songs.’
24. विवेचनात्मक गद्य,महादेवी वर्मा, पृष्ठ 189
25. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ 287
26. हिन्दी साहित्य-कोश, पृ. 287 (भाग १)
27. ऋग्वेद, अo 8 मo 1
28. Encyclopedia Britanica –vol IX, Page – 477
29. ग्रिम – एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका – भाग प्रथम पृ.448
30. पर्सी - एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका – भाग प्रथम पृ.447
31. राल्फ विलियम्स - एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका – भाग प्रथम पृ.448
32. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ.178
33. देवेन्द्र सत्यार्थी , आजकल 7 नवम्बर 1951 (सम्पादकीय)
34. आंध्र : लोक साहित्य एवं संस्कृति, डॉ. आई. एन. चंद्रशेखर रेड्डी –पृ. 18
35. लोक साहित्य की भूमिका, सत्यव्रत अवस्थी, पृ.114
36. खड़ी बोली का इतिहास, सत्या गुप्त, पृ.112
37. हिन्दी लोक साहित्य, प्रथम खण्ड, डॉ.गणेशदत्त सारस्वत, पृ. 29
38. भारतीय लोक साहित्य, श्याम परमार, पृ.53
39. कविता कौमुदी, भाग-पंचम, रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 47
40. लोक साहित्य विज्ञान, सत्येन्द्र, पृ. 390
41. रढियाली रात, भाग-प्रथम, झवेरचंद मेघाणी, पृ.6
42. राजस्थान के लोकगीत, नरोत्तम दास स्वामी एवं सूर्यकिरण पारीक, पृ 1-2
43. काव्य के रूप, गुलाबराय, पृ.123
44. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी
45. भारतीय लोक साहित्य, डॉ.श्याम परमार, पृ. 25
46. कविता कौमुदी भाग-5, रामनरेश त्रिपाठी, पृ.45
47. राजस्थानी लोकगीत,सूर्यकरण पारीक, पृ.22-25
48. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य, शकुंतला वर्मा , पृ.122
49. गढ़वाली लोकगीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन, गोविंद चातक, पृ.13-14
50. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, शंकर लाल यादव, पृ.114-116
51. लोक साहित्य, विद्या चौहान, पृ- 70
52. लोक साहित्यविज्ञान, सत्येन्द्र, पृ.405-406
53. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन,सोहन दान चारण, पृ. 28-29
54. गुजरातनां लोकगीतों, खोडीदास परमार,पृ.16
55. चंपानी कळीओमां कस्तुरी,डॉ.अमृत पटेल, पृ.30-33
56. आपणा लोकगीतों, जयमल्ल परमार, पृ.63
57. लोकसाहित्य विज्ञान –डॉ.सत्येन्द्र, पृ.400